सामाजिक पुनर्निर्माण एवं गाँधी दर्शन

डॉ. रामजीलाल सेठी

सारांश

मानव एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहना उसकी मूल प्रवृति है। इसलिए समस्त समाज विज्ञानों के जनक अरस्तू ने उसे सामाजिक प्राणी कहा था। उसकी प्रगति या विकास का विहंगावलोकन करना भी इसे प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट है कि मानव ने जो कुछ भी प्रगति की है और जो भी गुण, विशेषताएं एवं शक्ति उसने निवर्धित की है, संक्षेप में कहे, तो जिस भी रूप में उसका विकास हुआ है, वह सब असंभव होता, यदि उसने अपने को अपने जाति-बांधवों, कुल एवं जातियों या सामान्य रूप में समाज में विच्छन्न कर लिया होता। केवल इतना ही नहीं, मानव के रूप में जीना भी उसके लिए मुश्किल से संभव होता। वास्तव में व्यक्ति एवं समाज इतने अंतरावलंबित एवं परस्पर पूरक बन गये हैं कि एक के बिना दूसरे की सत्ता, स्थिरता एवं प्रगति की कल्पना करना भी कठिन प्रतीत होता है।

मूल शब्दः समाज, सामाजिक प्राणी, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक पुनर्निर्माण

Corresponding author
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

प्रस्तावना

मानव एक सामाजिक प्राणी है और समाज के बिना जीना भी उसके लिए संभव नही है। समाज के बिना मानव केवल अंधा पशु है और मानव के बिना समाज विसंगत एवं अर्थहीन है। बहुत से व्यक्ति मिलकर एक समाज की रचना करते हैं जो बदले में उसके अस्तित्व को सुखमय एवं उनके जीवनादर्श की उपलब्धि को संभव बनाता है।[1] महात्मा गाँधी वे मानव थे जिन्होंने तीस करोड़ जनता को विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया और उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिला दी और जिन्होंने मानव-राजनीति में पिछले दो हजार वर्षों के सर्वाधिक शक्तिमान धार्मिक संवेग का समावेश किया। सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक रेने फुलो मिलर के शब्दों में "वे अनन्य सामाजिक क्रांतिकारी थे" या यदि हम समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत शर्तों के सम्बन्ध में

समाज विज्ञान के जर्मन प्राध्यापक कार्ल मैनहीम से सहमत हो तो वे सच्चे क्रांतिकारी थे। मैनहीम का विश्वास है, केवल मात्र व्यक्ति की पुनः रचना द्वारा ही समाज का पुनर्निर्माण संभव है।[2]

महात्मा गांधी समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते थे, जिसका मूल कारण था समाज में रहने वाले समस्त वर्गों का सर्वांगीण विकास हो। गाँधी के सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रयास में प्रथम स्थान व्यक्ति का है। समाज का प्रश्न वास्तव में व्यक्ति की गरिमा' एवं नागरिक महत्ता का प्रश्न है। इसका प्रमुख कारण गाँधी ने मनुष्य की आत्मा की सर्वोपरिता को माना एवं उनके दृष्टिकोण में समाज की उन्नति साधारण व्यक्ति की आध्यात्मिक शक्ति के विकास पर निर्भर है। व्यक्ति नितान्त भौतिक तत्वों का मशीनी संयुक्तीकरण नहीं, बल्कि एक दैवीय चिंगारी है। इसलिए इसमें आध्यात्मिक आत्मचेतना और नैतिक अन्तरात्मा है। वस्तुतः ईश्वर और व्यक्ति की आत्मा का सम्बन्ध यह है कि व्यक्ति अहंकार के बन्धनों को तोडकर मानवता के महासागर में अपने को मिला देता है। इस प्रकार व्यक्ति गौरव का भागी होता है, दूसरी ओर, यदि व्यक्ति स्व' एवं 'अहं' को उजागर करता है तो वह अपने और ईश्वर के बीच में एक अवरोध उत्पन्न कर लेता है। इस विकृत भावना का परित्याग ही ईश्वर में समाहित होना माना गया।

गाँधी के विचार में ईश्वर एवं मनुष्य में कोई विरोध नहीं है। साथ ही सभी जीवधारियों की मूलभूत एकता में विश्वास होने के कारण गाँधी ने माना कि व्यक्ति सृष्टि का सेवक है, स्वामी नहीं है। मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है। आत्मा भौतिक जीवन से संयुक्त नहीं। इसलिए जो घटना एक शरीरधारी पर घटती है, उसका प्रभाव समग्र जड पदार्थों पर और सबकी आत्मा पर पड़ता है।[3] गाँधी आत्मा की शक्ति को अहिंसा के साथ समीकृत करते है। अपूर्ण मनुष्य के लिए यह तत्व पूरी तरह ग्राह्य नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य उसके पूर्ण प्रकाश को सहन नहीं कर सकेगा, लेकिन जब आत्मशक्ति का लघुतम अंश मनुष्य में सक्रिय हो तब वह आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। स्मरणीय है कि यद्यपि गाँधी सामाजिक पुनर्निर्माण में व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानते हैं, लेकिन समाज के संस्थागत सुधार पर बल देते हैं।[4]

महात्मा गांधी बहुआयामी थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में वे मनुष्य में सदगुणों का विकास करना चाहते थे। मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी महात्मा गांधी के विचार आध्यात्मिक विश्वासों और नैतिक सिद्धान्तों के साथ अविभाज्य रूप से सम्बन्धित हैं। वे केवल मनुष्य के शारीरिक, बाह्य आचार व्यवहार का ही अध्ययन नहीं करते, मनुष्य के मूल स्वभाव एवं उसके सच्चे आध्यात्मिक स्वरूप को जानते हैं। गाँधी ने माना, 'हममें से प्रत्येक में अच्छाई और बुराई का सम्मिश्रण है। क्या हममें प्रचुर मात्रा में बुराई नहीं हैं ? मुझमें तो काफी है...और मैं सदा

ईश्वर से अपने को बुराई से शुद्ध करने की प्रार्थना करता हूं। मनुष्य में भेद केवल परिणाम का है। इसलिए महात्मा गांधी ने कहा कि मनुष्य को दो भागों में से एक को चुनना होगा-ऊर्ध्वगामी या अधोगामी-लेकिन क्योंकि उसके अन्दर पशु है, वह ऊर्ध्वगामी मार्ग की अपेक्षा अधोगामी को आसानी से चुनेगा, विशेषकर यदि अधोगामी मार्ग उसके सामने सुन्दर रूप में रखा जाये। अधोगामी प्रवृत्ति उसमें सन्निहित है। इस प्रकार सामाजिक पुनर्निर्माण में गाँधी की आस्था समुदायों की अपेक्षा व्यक्तियों में अधिक रही। यद्यपि गाँधी मनुष्य स्वभाव की वैयक्तिक एवं सामूहिक दुर्बलताओं से परिचित थे, किन्तु वे मनुष्य को स्वभाव से निम्न नहीं मानते, क्योंकि मनुष्य सर्वप्रथम आत्मा है। प्रत्येक मनुष्य में उच्चतम विकास की क्षमता है। व्यक्ति का जीवन एक प्रेरणा है। इसका लक्ष्य पूर्णता के लिए प्रयत्नशील रहना है, जो आत्मोपलब्धि है। महात्मा गांधी ने माना कि व्यक्ति की मनोवृत्ति एवं दृष्टिकोण को नैतिक व मनोवैज्ञानिक आधारों पर बदला जा सकता है, क्योंकि व्यक्ति सम्पूर्णता की प्राप्ति एवं निरन्तर क्षमतावृद्धि से प्रेरित होता है। इसके लिए गाँधी तपस्या और त्याग पर बल देते हैं।[5]

गाँधी के अनुसार समस्त कष्टों का मूल कारण मनुष्य में अन्तर्निहित अपूर्णताएं हैं। अतः जब तक इन अपूर्णताओं को समाप्त नहीं किया जायेगा तब तक सामाजिक पुनर्निर्माण असम्भव है। इसी पूर्व प्राथमिकता के आधार पर महात्मा गांधीवर्ग संघर्ष' के स्थान पर 'वर्ग समन्वय' को प्राथमिकता देते हैं। इसके लिए महात्मा गांधीवर्णाश्रम धर्म का आश्रय लेते हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियों लेकर जन्म लेता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की कुछ निश्चित सीमाएं होती है।[6]

गाँधी ने तत्कालीन सामाजिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया में अस्पृश्यता निवारण को प्रथम स्थान दिया। उनके मतानुसार 'मेरी राय में हिन्दू धर्म में दिखाई पड़ने वाली अस्पृश्यता का वर्तमान रूप ईश्वर और मनुष्य के विरूद्ध किया गया भयंकर अपराध है। उसने लगभग चार करोड़ लोगों का विकास रोक रखा है, इसलिए इस बुराई को जितनी जल्दी निर्मूल कर दिया जाये, उतना ही मानव जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा। अस्पृश्यता के रूपान्तरण में समाज में विकृति एवं विशेषाधिकारों को बढ़ावा दिया है। अतः गाँधी ने माना कि ऐसी विकृति की समाप्ति अनिवार्य है। अस्पृश्ता निवारण को दायित्व, प्रायश्चित एवं सामाजिक प्राथमिकता का प्रतीक मान कर महात्मा गांधीने सामाजिक पुनर्निर्माण को आवश्यक माना।7

समाज के नव निर्माण की एक महत्वपूर्ण बाधा साम्प्रदायिकता है जिसका महात्मा गांधीने विरोध किया। उनके अनुसार हिन्दू-मुसलमान समस्या पारस्परिक अविश्वास प्रतिशोध, असमानता, कटुता और तनाव की

स्थिति में उत्पन्न हुई। इसके समाधान का एक ही उपाय है-सद्भावना, सहिष्णुता, न्याय एवं पारस्परिक सम्पर्क के वातावरण की स्थापना महात्मा गांधीके अनुसार साम्प्रदायिकता भारतीय इतिहास पर कालिमा रही है। इसलिए गाँधी ने सभी धर्मों एवं धर्माधिकारियों से सचेत रहने का आह्वान किया और माना कि बलपूर्वक किसी भी धर्म का प्रचार करना, धर्म परिवर्तन कराना अमानवीय और अमान्य कृत्य है। महात्मा गांधीके अनुसार हिन्दू-मुसलमानों के मध्य संघर्ष वास्तव में ब्रिटिश शासकों के आगमन के साथ उग्र हुआ। राजनीति को संकीर्ण एवं स्वेच्छाचारी दृष्टि से देखने के फलस्वरूप एक अस्वाभाविक स्थिति प्रबल बन गई। यही कारण था कि गाँधी हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्वराज्य की पूर्व शर्त मानते हैं।8

सामाजिक न्याय एवं शक्ति संवर्धन हेतु गाँधी स्त्री एवं पुरुष की समानता देने के पक्ष में थे। महात्मा गांधीने नारी के मूल में छिपी मातृ शक्ति, त्याग, करूणा, दान प्रेम एवं अहिंसा को प्रार्थमिक माना। महात्मा गांधीने माना कि स्त्री पुरुष की साथी है,. जिसकी बौद्धिक क्षमताएं पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं। समाज की प्रक्रिया में दोनों भागीदार है। स्त्री शिक्षा एवं विकास के अभाव में सामाजिक पुनर्निर्माण असम्भव होगा। भारतीय आन्दोलन में गाँधी ने उनकी क्षमता एवं साहस को वरीयता दी। गाँधी के अनुसार यदि नारी समाज निम्न माना जाए तो राष्ट्रीय प्रगति का अवरूद्ध होना स्वाभाविक है। स्त्री-पुरुष की परिपूरकता में गाँधी ने रचनात्मकता को आसीन पाया। गाँधी ने नारी की स्वतन्त्रता एवं शिक्षा पर बल दिया और उन लोगों की कटु आलोचना की जो इस सन्दर्भ में उदासीन रहते हैं। अन्य सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के अनवरत प्रयास के रूप में महात्मा गांधी ने बाल विवाह का विरोध किया और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। गांधी जी ने माना कि धर्म के नाम पर गोरक्षा के लिए आन्दोलन करना, परन्तु विधवाओं की दुर्दशा पर मूक रहना अधार्मिक, अनैतिक एवं अमानवीय है।[9]

महात्मा गांधी पर्दा एवं दहेज जैसी कुप्रथाओं के विरूद्ध थे और इसे नैतिकता की रक्षा के पक्ष के विरुद्ध मानते थे, क्योंकि नैतिकता ऐसी निधि नहीं जिसे दीवारों के भीतर बन्द रखा जा सके। इसलिए गाँधी के अनुसार पर्दा प्रथा नारी के लिए अपमानजनक है। इसी प्रकार दहेज प्रथा के सम्बन्ध में गाँधी ने कहा कि विवाह वित्तीय अथवा साधनों की सौदेबाजी से अपवित्र होते है। वास्तव में दहेज प्रथा जाति प्रथा से सम्बद्ध है। जब तक विवाह के लिए चुनाव का क्षेत्र अमुक जाति के इने-गिने लड़को या लड़कियों तक सीमित रहेगा तब तक यह प्रथा भी बनी रहेगी। अतः इस बुराई का उन्मूलन करना ही होगा। इसका अर्थ है चरित्र की ऐसी शिक्षा जो देश के युवकों और युवतियों के मानस में आमूल-चूल परिवर्तन करें। महात्मा गांधी ने माना कोई भी ऐसा युवक

जो दहेज को विवाह की शर्त बनाता है, वह अपनी शिक्षा को कलंकित करने के साथ-साथ अपने देश को भी कलंकित करता है। दहेज की इस नीचे गिराने वाली प्रथा के विरुद्ध शक्तिशाली लोकमत उत्पन्न करना चाहिए और जो युवक इस पाप के सोने से अपना हाथ गन्दा करते हैं, उनका समाज से बहिष्कार किया जाना चाहिए।[10]

महात्मा गांधी ने प्रत्येक प्रकार के मादक साधनों का विरोध किया, जैसे शराब, अफीम तम्बाकू सिगरेट आदि, क्योंकि ये केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य के ही नहीं सामाजिक मर्यादाओं के विनाशकारी साधनों के रूप में अवतरित होते हैं। अनेक विकृतियाँ इन्हीं व्यसनों की देन है। नागरिक एवं प्रशासक दोनों ही अनेक प्रकार की सहज धन-लाभ प्रवृत्तियों के दास बनते हैं एवं समाज की अहित वृद्धि निश्चित रूप से होती है। गाँधी ने माना कि बीमारियों से तो केवल शरीर को ही हानि पहुँचती है. जबकि शराब आदि से शरीर और आत्मा दोनों का नाश हो जाता है।[11]

महात्मा गांधी ने सामाजिक परिवर्तन हेतु आर्थिक पुनर्निर्माण की जिन प्राथमिकताओं को इंगित किया वे भी उनके वैचारिक आग्रहों का प्रतीक थी। पश्चिमी सभ्यता औधोगीकरण, मशीनीकरण तथा एकाधिकारी आर्थिक संयन्त्र की विकृतियों से संशकित गाँधी के विकल्प स्वाभाविक रूप से विकेन्द्रित एवं स्थानीय स्वायत्ता के मूल्यों से प्रेरित थे। व्यक्ति की महत्ता एवं गरिमा की प्राथमिकता के प्रहरी के रूप में ये मानते थे कि अर्थतन्त्र के भौतिक अमानुषिक तत्वों के निराकरण एवं उनके मानवीकरण में ही सहज सुलभ उपलब्धियों निहित हैं।[12]

समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत शर्त

महात्मा गांधी के अनुसार समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत शर्त स्वयं मानव की पुनः रचना ही है। महात्मा गांधी के लिए मनुष्य केवल अस्थि-मांस का समवाय मात्र न होकर उससे कुछ अधिक और उसके परे भी कुछ हैं। उनके अनुसार इस समस्त दृश्य, अस्थायी, अचेत पदार्थ समूह के पीछे एक चैतन्य शक्ति है जो आत्मा है, जो अदृश्य, शाश्वत, सर्वव्यापी एवं स्वप्रयुद्ध है। यह ईश्वर का अंश है। दूसरे शब्दों में यह मनुष्य में निहित ईश्वरता है। उनका कहना है ईश्वर और मनुष्य में तथा सृष्टि की निम्नतर योनियों में भी कोई अन्तर्विरोध नहीं है। यह काल और देश का अतिक्रमण करता है और समस्त प्रतीयमान विभिन्न सत्ताओं को अन्ति करता है। मैं ईश्वर की परिपूर्ण एकता में विश्वास करता हूँ। अतः मानवता की भी परिपूर्ण एकता का

विश्वासी हूँ।"[13] मैं अद्वैत का विश्वासी हूँ, मैं मनुष्य की ही नहीं बल्कि समस्त जीवों की, अनिवार्य एकता का विश्वासी हूँ।

एक आधुनिक मनुष्य के लिए आत्मा की अवधारणा को हृदयंगम करना उतना ही कठिन है, जितना ईश्वर की अवधारणा को। यद्यपि उपनिषदों ने इस समस्या का विस्तारपूर्वक विवेचन कर अपने ढंग से सन्देहों का निरसन करने का प्रयास किया है। मेरा विश्वास है कि कुल मिलाकर मेरी यह उक्ति अतिरंजनापूर्ण नहीं है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आधुनिक मनुष्य को सांघातिक आघात झेलना पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप वह गहरे अनिश्चय का शिकार हो गया है।[14]

जो हो, आत्मा की समस्या की गहनता से उलझना हमारे क्षेत्र एवं सामर्थ्य के बाहर की बात है। हम केवल इसी तथ्य पर बल देना चाहते हैं कि गाँधी दर्शन में आत्मा का अत्याधिक महत्व है। अपनी समस्त योजनाओं एवं कार्यक्रमों में महात्मा गांधी मनुष्य के केवल भौतिक व्यवहारों का ही विचार नहीं करते बल्कि उसकी वास्तविक प्रकृति का, उसके सच्चे स्वरूप का उसके आध्यात्मिक तत्व का भी विचार करते हैं। आत्मा की सत्ता में विश्वास की आवश्यकता के सम्बन्ध में उनका मत सार्थक है। आत्मा शरीर के उपरान्त भी विद्यमान रहती है। इस ज्ञान के कारण सत्याग्रही इसी जीवन में सत्य की विजय देखने के लिए अधीर नहीं होता। अपने द्वारा सामाजिक रूप से अभिव्यक्त सत्य को विरोधी भी ग्रहण कर सकें इसके प्रयास में मरण का भी वरण करने की क्षमता में ही वस्तुतः सत्याग्रही की विजय निहित है।[15]

समाज, धर्म एवं राजनीति का परस्पर सम्बन्ध

महात्मा गांधी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अतिशय लौकिक, राजनीतिक एवं आर्थिक व्यापारों में भी लगे रहते थे ऐसा क्यों ? महात्मा गांधी का उत्तर है कि वे सत्य के अन्वेषी है और जो मनुष्य सत्य की सर्वव्यापी भावना की उपलब्धि का आकांक्षी है, वह अपने को जीवन के किसी भी क्षेत्र से अलग नहीं रख सकता। उनका कथन है, "इसी कारण सत्य के प्रति मेरी निष्ठा ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में खींच लिया।" वस्तुतः वे राजनीति को अपरिहार्य दोष रूप में देखते थे। यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो सिर्फ इसीलिए कि आज राजनीति ने हमें नागपाश की तरह जकड़ रखा है, जिससे कोई कितनी भी चेष्टा क्यों न करे छूट नहीं सकता। मैं इस नाग से जूझना चाहता हूँ साथ ही मैं राजनीति में धर्म का प्रवेश कराने की चेष्टा कर रहा हूँ।

इसके अतिरिक्त, चूकि वे मानव जाति की परिपूर्ण एकता में विश्वास करते थे। अतः वे मानव जाति से अपना पूर्ण तादात्म्य मानते थे। अतः उनके जीवन के उद्देश्य 'आत्मोपलब्धि' की तब तक सिद्धि नहीं हो सकती जब तक 'सर्वोदय' (सबका अधिकतम कल्यान) की स्थिति नहीं बन जाती और तथाकथित लौकिक व्यापार में भाग लिये बिना यह असंभव है। महात्मा गांधी की दृष्टि में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य की विविध प्रचेष्टाएं एक-दूसरे से सर्वथा कटी हुई न होकर परस्पर सम्बद्ध है और वे मिलकर सहज, अन्वित, समग्र की रचना करती है। एक प्रश्न के उत्तर में महात्मा गांधी ने कहा कि "यह मेरी सामाजिक गतिविधि का विस्तार मात्र है। तब तक मैं धार्मिक जीवन अतिवादित नहीं कर सकता जब तक कि मैं सम्पूर्ण मानव जाति के साथ तादात्म्य नहीं कर लेता और वह मैं तब तक नहीं कर सकता जब तक में राजनीति में भाग नहीं लेता। मानवीय प्रचेष्टाओं का सम्पूर्ण क्षेत्र आज एक अखण्ड समग्र की रचना करता है। आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं विशुद्ध धार्मिक कार्यों को सर्वथा पृथक खण्डों में विभक्त नहीं कर सकते। उनके अनुसार राजनीतिक दासता, आर्थिक शोषण एवं सामाजिक उत्पीड़न सर्वोदय की सिद्धि में बाधाएं हैं। अतएव आत्मोपलब्धि के इच्छुक का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करें जिसमें मनुष्य राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक मुक्ति एवं सामाजिक गौरव का उपभोग कर सके।"[16]

मानव एवं समाज का पारस्परिक सम्बन्ध

समाज, मानव समाज के इर्द-गिर्द घूमता है। अतः मानव इसका केन्द्र बिन्दु है। समाज इसकी अन्य संस्थाएँ तथा इसके विकास और इसके स्वभाव के अनुरूप ही समझा जा सकता है। बिना मानव स्वभाव का विचार किए किसी भी सामाजिक सिद्धान्त की सफलता असंभव हैं। अतएव समाज दर्शन के इतिहास में जितने भी समाज सम्बन्धी सिद्धान्त निरूपित हुए हैं, उसके पीछे उन विचारकों के मानव सम्बन्धी विचार ही आधार तत्व है। महात्मा गांधी के सामाजिक सिद्धान्तों का शुभारम्भ मानव चिन्तन से किया जा सकता है।[17]

मानव एकाकी जन्म लेता है किन्तु ऐसा लगता है कि समाज में रहना उसका स्वभाव है। समाज के बिना मानव केवल पशु है और मानव के बिना समाज विसंगत एवं अर्थहीन है। बहुत से व्यक्ति मिलकर एक समाज की रचना करते हैं जो बदले में उसके अस्तित्व को सुखमय एवं उनके जीवनादर्श की उपलब्धि को संभव बनाता है।[18] किन्तु इसे ध्यान में रखना संगत है कि मानव अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सके इसके लिए एक विशिष्ट प्रकार की समाज व्यवस्था आवश्यक है। यह ऐसी होनी चाहिए जो लक्ष्य प्राप्ति के

मार्ग की बाधाओं का निर्मूलन करे एवं व्यक्ति को अपने पथ पर अग्रसर होने की सुविधाएं प्रदान कर सके। महात्मा गांधी ने ऐसी समाज व्यवस्था को सर्वोदय समाज की संज्ञा दी।[19]

महात्मा गांधी ने प्राचीन वर्ण व्यवस्था को स्वीकार कर प्रत्येक वर्ग के कार्यों को समान महत्व दिया। उनके अनुसार सामाजिक अर्थशास्त्र में मालिक और मुनीम एक अविभाज्य प्राणी के ही अंग है, जहाँ न तो कोई हीन है और न कोई श्रेष्ठ।" इसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शुद्ध का विभाजन भी उनके अनुसार श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर हुआ है परन्तु सभी के कार्यों का समान महत्व है। ऐसे भी गाँधी ने स्वीकार किया कि समाज व्यक्तियों से अलग कुछ भी नहीं है। अर्थात् समाज रूपी शरीर का व्यक्ति भिन्न-भिन्न अंग है। गाँधी व्यक्ति और समाज को श्रेष्ठता और हीनता के आधार पर नहीं समझते। व्यक्ति और समाज का स्वाभाविक अन्योन्याश्रम सम्बन्ध मानते हैं। वे व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और कल्याण का महत्व सर्वोच्चता से स्वीकार करते हैं। अतः समाज की तुलना में व्यक्ति का अधिक महत्व है।

मानव समाज का विकास एवं नवीन समस्याएं

गाँधी समाज व्यवस्था का चित्र अंकित करने के पूर्व उस विभिन्न सामाजिक आंदोलन एवं समस्याओं का ऐतिहासिक दृष्टि से सिंहावलोकन एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण कर लेना लाभदायक होगा, जिन्होंने उस समाज व्यवस्था को जन्म दिया, जिसमें महात्मा गांधी रहते थे और जिसे परिवर्तित करने के लिए वे प्रयासशील थे। चूंकि सामाजिक विकास का अतीत की परम्परा से अविच्छेद रूप से सम्बद्ध होता है इसलिए यह आवश्यक है। अपनी शान्ति एवं समृद्धि, स्वतंत्रता एवं प्रगति के लिए भी नयी समस्त मानव प्रवेष्टाएं ऐतिहासिक परम्परा की कड़ियों के सदृश है। सभी पदार्थ एवं सभी विचार एक श्रृंखला की कड़ियाँ है।[20]

वस्तुतः सामाजिक सिद्धान्त प्राचीन प्रयोगों एवं विगत अनुभवों पर आधारित होते हैं। इन प्रयोगों एवं अनुभवों के तार्किक परिणाम के रूप में नवीन सामाजिक चेतना का जन्म तथा समाज व्यवस्था की आवश्यकता का बोध होता है। प्रो. हाबहाउस के अनुसार "सामाजिक विकास के इतिहास की प्रत्येक दिशा में परिणति समाधानों में नहीं समस्याओं में होती है। अब तक के उपलब्ध समाधान नयी समस्याओं को जन्म देते हैं। एक महान समाज चिन्तक या क्रांतिकारी अपने में समाज की सामुहिक इच्छा का प्रतीक एवं अभिव्यंजन करता है तथा विगत प्रयोग से उद्भूत समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करता है।"[21] अतः इससे

निष्कर्ष निकलता है कि कहीं भी चाहे प्रकृति के क्षेत्र में हो या मानव क्रियाकलाप के क्षेत्र में वर्तमान को अतीत के सन्दर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता।[20]

सन्दर्भ सूची

1. हावहाउस एल.डी. सोशल इवोल्यूशन एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी 1911. पू.सं. 12

2. मैन एण्ड सोसायटी (कंगन पाल 1946). पृ.सं. 15

3. हरिजन, 30 अक्टूबर, 1937

4. आशा कौशिक, गाँधी नयी सदी के लिए प्रत्यय एवं परिवर्तन, जयपुर पू. सं. 234

5. वर्मा वी.पी. द पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी एण्ड सर्वोदय, आगरा, 1965. पू.स. 61

6. राजेश कुमार शर्मा का लेख सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तनः अन्योत्याश्रितत्ता के आयाम, गाँधी नयी सदी के लिए, सम्पादक आशा कौशिक, पृ.सं. 235

7. दर्मा वी.पी. पूर्वोक्त, पू.सं. 201

8. प्रभु आर. के. मेरे सपनों का भारत, नवजीवन, अहमदाबाद, 1960, पृ. सं. 238

9. वहीं, पृ.सं. 240-41

10. यंग इंडिया, 3 मार्च, 1927

11. वर्मा वी.पी. पूर्वोक्त. पू. सं. 232

12. राजेश कुमार शर्मा का लेख, पूर्वोक्त, पृ.सं. 237

13. धवन जी. एन. पॉलिटिकल फिलॉसफी, पृ.सं. 40

14. जुंग सी.जी. मॉडर्न मैन इन सर्चऑफ ए सोल ई.टी. 1933. पू.स. 200

15. एम. के. गाँधी, स्पीचिज एण्ड राइटिंग्स, मद्रास 1934, पृ.सं. 504

16. माई एक्सपेरिमेन्ट्स, खण्ड-2, पृ.सं. 591

17. दत्ता डी. एम. दी फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, पृ.सं. 70

18. हा हाउस एल. डी. सोशल इवोल्युशन एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी, 1911, पृ.सं. 30

19. हक्सले, अल्डुअल एण्ड्स मीन्स, लंदन, 1938, पृ.सं. 1

20. कैम्ब्रिज, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, प्रथम खण्ड, पृ.सं. 63

21. हान्सहाउस एल.डी. पूर्वोक्त, पृ.सं. 166